**ओ३म्**

**‘मनुस्मृति और आर्यसमाज का तीसरा नियम’**

**-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने 10 अप्रैल, सन् 1875 को मुम्बई में आर्यसमाज की स्थापना की थी। वेदों को संसार के सभी मनुष्यों का यथार्थ व सच्चा धर्म मानकर उनका प्रचार व प्रसार करने वाला आर्यसमाज विश्व का पहला सर्वतोमहान संगठन था व है। महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा आर्यसमाज के बनाये 10 नियम हैं जिनमें तीसरा नियम है **‘वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।’** इस नियम के दो भाग हैं पहला है **‘वेद सब विद्याओं का पुस्तक है’** और दूसरा **‘वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यो का परम धर्म है’।** यह प्रश्न हो सकता है कि यह बात महर्षि दयानन्द ने अपने वेदों के अध्ययन के आधार पर कही अथवा इसका कोई शास्त्रीय आधार भी है? आर्यसमाज के इस तीसरे नियम के यह दोनों ही आधार सत्य हैं। महर्षि दयानन्द का अध्ययन भी इस नियम को स्वीकार करता है और साथ ही मनुस्मृति में भी इन सिद्धान्तों के प्रतिपादक दो श्लोक उपलब्ध हैं।

 आर्यजगत् में वेद व वैदिक साहित्य के अत्योच्च कोटि के शोध विद्वान पं. भगवदत्त जी हुए हैं। उनकी एक लघु पुस्तक व विस्तृत लेख है जिसका शीर्षक है **‘मनुष्यमात्र का परममित्र स्वायंभुव मनु’।** अपने इस लेख में पं. भगवद्दत्त जी ने मनुस्मृति के दोनों श्लोकों को प्रस्तुत कर उनका अनुवाद दिया है और साथ ही इसकी पुष्टि में अपने विचार भी प्रस्तुत किये हैं। आर्यसमाज के नियम का प्रतिपादक मनुस्मृति का प्रथम मंत्र व उसका अर्थ निम्नानुसार हैं।

 मनुजी (मनुस्मृति श्लोक 2/7) में कहते हैं --

**यः कश्चित् कस्यचिद् धर्मो मनुना परिकीर्तितः।**

**स सर्वोऽभिहितो वेदे सर्वज्ञानमयो हि सः।।**

अर्थात् जो कुछ किसी का भी धर्म मनु ने कहा है, वह सब वेद में कहा गया है। वेद सर्वज्ञानमय है। (अथवा मनु भी सर्वज्ञानमय है।)

 मनु-विषयक यह दूसरा अर्थ श्लेष से आकृष्ट होता है। गोविन्दराज ने पहला अर्थ ही ठीक माना है।

 **‘वेद और वेद का प्रतिपादक मनु दोनों सर्वज्ञानमय’** शीर्षक से पं. भगवद्दत्त जी लिखते हैं कि मनु जी उपर्युक्त श्लोक से पहले श्लोक 2/6 में में कह चुके हैं कि वेद अखिल धर्म का मूल है {वेदोऽखिलो धममूलम्। मनु. 2/6) अर्थात् वेद सम्पूर्ण धर्म (कानून Law) का मूल वा आधार है। धर्म राज्य का एक प्रधान अंग होता है। धर्म से ही दण्ड वा शासन चलता है}। अब उससे भी अधिक कथन है--वेद सर्वज्ञानमय है। वेद का अध्यापक, वेदपारग सर्वज्ञानमय होता है।

 आर्यसमाज के तीसरे नियम पर प्रकाश डालते हुए पं. भगवद्दत्त जी लिखते हैं कि दूरदर्शी, महामुनि पण्डित स्वामी दयानन्द सरस्वती ने आर्यसमाज का तीसरा नियम बनाया--वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। इस नियम का मूल मनुस्मृति का यही श्लोक 2/7 है। इस नियम के शेष भाग (वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है) का मूल मनुस्मृति का श्लोक 4/147 है। श्लोक निम्न है-

 **वेदमेवाभ्यसेन्नित्यं यथाकालमतन्द्रितः।**

**तं ह्यस्याहुः परं धर्ममुपधमोऽन्य उच्यते।।**

अर्थ--नित्य ठीक समय पर आलस्य रहित होकर वेद का अभ्यास करे। यह तो मनुष्य का परम धर्म है। अन्य सब गौण (उप व सहायक) धर्म हैं। आगे पं. भगवद्दत्त जी लिखते हैं कि स्वामी दयानन्द सरस्वती मनु के अनन्य-भक्त थे। उन्होंने अपने उपदेश का आधार उपनिषदों, ब्रह्मसूत्र और गीता को नहीं बताया। शंकर, रामानुज और वल्लभ आदि पुरातन आचार्यों से वे अधिक दीर्घदर्शी थे। उनका मार्ग प्रवृत्ति और निवृत्ति के समन्वय का मार्ग था। वे राजनीति को भी मानव-कल्याण का सोपान मानते थे। अतः वेद से बाद के मनुस्मृति को उन्होंने अपने उपदेश का अंग बनाया। और मनुस्मृति के सतत अभ्यास से वेद के सर्वज्ञानमय होने का तथ्य उनके हृदय पर अमिट रूप से अंकित हो गया।

महर्षि दयानन्द अपने वेदों व मनुस्मृति के ज्ञान के आधार पर आर्यसमाज के प्रथम नियम में यह विधान करते हैं कि सब सत्य विद्याओं का मूल ईश्वर है और यह वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक होने से ही ईश्वर का ज्ञान है। प्रथम नियम में ही वह सृष्टि के सभी पदार्थों अर्थात् सूर्य, चन्द्र, पृथिवी आदि अनन्त सृष्टि व प्राणी जगत जिन्हें विद्या से जाना जाता है उसका मूल अर्थात् उसका निमित्तकारण व आधार भी ईश्वर को बताते हुए इस मान्यता का विधान करते हैं। उनके शब्द हैं **‘सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उनका आदि मूल परमेश्वर है।‘** ऋषि के बनाये सभी नियम सत्य, तथ्यपूर्ण व सर्वमान्य हैं क्योंकि आज तक संसार का कोई भी विद्वान, ज्ञानी, वैज्ञानिक वा धार्मिक आचार्य इन नियमों में किसी प्रकार की कमी व त्रुटि नहीं बता सका।

आजकल बहुत से राजनीतिक दल अपने अपने राजनीतिक स्वार्थों व वोट बैंक की राजनीति के कारण मनुस्मृति का विरोध करते हैं। उनमें से न तो किसी ने मनुस्मृति को पढ़ा है न वह पूर्णरूपेण इसे जानते व समझते हैं। अतः इस प्रकार का विरोध अनुचित है। मनुस्मृति का आविर्भाव सृष्टि के आरम्भ काल में हुआ था। महाभारत काल तक यह अपने शुद्ध रूप में रही है जिसका कारण यह है कि समाज में ऋषि मुनि बहुतायत में थे जिनके होते हुए अवैदिक मान्यताओं व प्रक्षेपों को मनुस्मृति में किंचित भी स्थान नहीं मिला। महाभारत काल के बाद अन्धकार का युग आया। इस युग में स्वार्थी लोगों ने अपनी अपनी मान्यताओं के श्लोक बनाकर मनुस्मृति में डाल दिये जिससे मनु जी की प्रतिष्ठा का लाभ उन्हें मिले और वह समाज में प्रचलित हो जायें। महर्षि दयानन्द की दिव्य दृष्टि ने उन प्रक्षेपों को भलीभांति जाना था इसी लिए वह प्रक्षेपरहित मनुस्मृति की बात कहा करते थे। **उनके परवर्ती विद्वानों पं. गंगाप्रसाद उपाधाय, पं. तुलसी राम स्वामी, पं. राजवीर शास्त्री व डा. सुरेन्द्र कुमार आदि ने अनुसंधान कर प्रक्षिप्त श्लोकों को मनुस्मृति से हटा दिया है।** आज जो विशुद्ध मनुस्मृति उपलब्ध होती है वह प्रक्षेपों से रहित है। वेदों के बाद मनुस्मृति एक ऐसा ग्रन्थ है जिसकी कोटि व समानता का अन्य कोई ग्रन्थ संसार में नहीं है। यह भी बता दें कि आर्यजगत् की प्रसिद्ध मासिक पत्रिका **‘वैदिक पथ’** ने अपना अगस्त, 2016 का अंक **‘‘मनु और मनुवाद परीक्षा – विशेषांक”** के रूप में प्रकाशित किया है। यह पत्रिका **‘श्री घूड़मल प्रह्लादकुमार आर्य धर्मार्थ न्यास, ब्यानिया पाडा, हिण्डोन सिटी-राजस्थान, फोनः 09414034072/09887452959’** प्रकाशित की जाती है। मनुस्मृति के विषय में अधिक जानने के इच्छुक पाठक प्रकाशक महोदय से सम्पर्क कर सकते हैं। इन कुछ तथ्यों को प्रस्तुत करने के लिए हमने यह लेख लिखा है। पाठकों को यह उपादेय होगा ऐसा हमें प्रतीत होता है। इति।

  **-मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2**

**देहरादून-248001**

**फोनः09412985121**